चौलाई के उत्पादन की वैज्ञानिक खेती

डॉ. एच.एल. रैगर और **डॉ. डी.सी. भण्डारी**
अखिल भारतीय समन्वित अल्प प्रयुक्त फसल अनुसंधान नेटवर्क, राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली-110 012

चौलाई (रामदाना) एक बहुउद्देशीय धान्य फसल है जिसकी पत्तियों से लेकर तना एवं दाना सभी भाग उपयोग में लाए जाते हैं। सब्जी एवं दानों के लिए चौलाई की अलग-2 प्रजातियां उपलब्ध हैं। जन-जातीय क्षेत्रों में चौलाई एवं गेहूं के आटे से बनी रोटी को एक पूर्ण आहार माना जाता है। इसके दानों को फुलाकर इससे कई तरह के खाद्य पदार्थ विशेष रूप से लड्डू बनाना अधिक प्रचलित है। विकसित देशों में जैसे अमेरिका में चौलाई से कई प्रकार के बेकरी खाद्य पदार्थ जैसे बिस्कुट, पेस्ट्री, केक आदि बनाये जाते हैं। विश्वभर में चौलाई को एक अल्प प्रयुक्त फसल के रूप में उगाया जाता है परन्तु दक्षिण अमेरिका में इसका प्रचलन अधिक है। भारत में इसकी खेती जम्मू-कश्मीर से लेकर तमिलनाडु तथा गुजरात से लेकर उत्तर-पूर्वी भारत तक की जाती है। उत्तर-पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में चौलाई की खेती अधिक प्रचलित है। चौलाई पर्वतीय क्षेत्रों की प्रमुख नकदी फसल है जिसको रामदाना, चूआ तथा मार्सा के नाम से जाना जाता है। मध्य में ऊंचे पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी खेती काफी प्रचलित है। पर्वतीय क्षेत्रों में असिंचित पथरीली मिट्टी जिनमें उर्वरा की कमी, अधिक अम्लीयता तथा अनिश्चितकालीन वर्षा से उत्पन्न सूखे के कारण अधिकांश फसलें या तो उगती नहीं या अधिक उपज नहीं देती हैं। चौलाई की फसल विशेष गुणों तथा सूखा सहन करने की अपार क्षमता के कारण अधिक उपज देती है।

भारत में इसके उत्पादन का क्षेत्र 40-50 हजार हैक्टर आंका गया है, जिससे खासतौर से गुजरात प्रदेश में 6000 हैक्टर से 6000-10000 टन उत्पादन हर वर्ष होता है। गुजरात के बनासकांटा जिले के किसान आलू एवं गेहूं की जगह अब चौलाई की खेती करने लगे हैं।

वैज्ञानिक विधि से चौलाई की खेती लाभकारी

चौलाई के पोषक तत्वों का महत्व

शाकाहारी लोगों के लिए चौलाई एक विशेष खाद्य स्रोत है जिसकी गुणवत्ता मछली में उपलब्ध प्रोटीन के बराबर होती है। गेहूं की तुलना में चौलाई के दानों में दस गुणा से भी अधिक कैल्शियम, 3 गुणा से भी अधिक वसा तथा दुगने से भी अधिक लोहा होता है। चौलाई के दानों में गेहूं, धान तथा मक्का के दानों की तुलना में ट्रिप्टोफेन, मिथिओनीन तथा लाईसीन जैसे आवश्यक अमीनो अम्लों की मात्रा भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। बीजों की उत्तम कोटि के प्रोटीन से अमा-1 जीन चौलाई से वियुक्त करके चावल एवं आलू की फसलों में समाविष्ट किया गया है।

चौलाई की उपयोगिता

- चौलाई एक बहुउद्देशीय खाद्य पौधा है इसकी पत्तियां सब्जी के रूप में खाई जाती हैं।
- इसके दानों को फुलाकर कई प्रकार के बेकरी, खाद्य पदार्थ एवं लड्डू बनाये जाते हैं।
- इसकी पत्तियों में ऑक्सीलेट एवं नाइट्रोजन

औषधीय गुणों से युक्त चौलाई

की मात्रा कम होने के कारण यह पौष्टिक एवं सुपाच्य चारा माना जाता है।

- जन-जातियों द्वारा चौलाई को खसरा, गुर्दे की पसली का इलाज, सर्प दंत एवं मांस को संरक्षित करने आदि के उपयोग में लाया जाता है।
- चौलाई से प्राप्त तेल में स्क्वालिन नामक पदार्थ होता है जिसे सौन्दर्य प्रसाधनों, दवा तथा कम्प्यूटर की डिस्क की चिकनाई में प्रयोग करने के काम लिया जाता है।

उन्नत किस्में

चौलाई की विशेषताओं एवं गुणों को देखते हुए अखिल भारतीय अल्प प्रयुक्त फसल अनुसंधान परियोजना के तहत इसे समन्वित शोध हेतु चुना गया और पिछले 28 वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों से इसका जननद्रव्य इकट्ठा किया गया है। विभिन्न लक्षणों के प्रति जननद्रव्यों का मूल्यांकन किया गया तथा जननद्रव्यों का प्रयोग उन्नत किस्मों को विकसित करने के लिए किया गया। विभिन्न क्षेत्रों में चौलाई की उन्नत खेती की सस्य क्रियाओं का मानकीकरण किया गया। जिसमें 6 किस्में पर्वतीय क्षेत्रों के लिए तथा 7 पठारी क्षेत्रों के लिए विकसित की गई हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है।

पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उन्नत किस्में

अन्नपूर्णा (आई.सी. 42258-1): इस किस्म का विकास उत्तराखंड में पौढ़ी-गढ़वाल से एकत्रित जननद्रव्य आई.सी. 42258-1 में से छंटाई करके राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के शिमला क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा किया गया था। इसका अनुमोदन मध्यम एवं ऊंची हिमालयी पहाड़ियों में खेती के लिए सन् 1984 में हुआ। इसकी औसतन पैदावार 22.50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह किस्म अधिक प्रोटीन (15 प्रतिशत) के साथ सूखा सहन करने की क्षमता भी रखती है।

पी.आर.ए.-1 (8801): गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के पर्वतीय परिसर रानीचौरी द्वारा विकसित इस किस्म का अनुमोदन उत्तराखंड प्रदेश के लिए सन् 1997 में किया गया था। इसके बीजों में 13-15 प्रतिशत प्रोटीन एवं 9.2 प्रतिशत तेल की मात्रा पाई जाती है। इसकी औसतन पैदावार 14.50 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

पी.आर.ए.-2 (9001): इस किस्म का विकास उत्तराखंड प्रदेश में टिहरी जिले के सोलनी से एकत्रित जननद्रव्य में से छंटाई करके गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के पर्वतीय परिसर रानीचौरी द्वारा किया गया था। इस किस्म का अनुमोदन जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर संपूर्ण उत्तर-पश्चिमी हिमालय क्षेत्रों में खेती के लिए सन् 2000 में हुआ। इसके पौधे 138 सें.मी. तक बढ़ते हैं तथा लगभग 133 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन पैदावार 14.50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इस किस्म के बीजों में उच्चतम प्रोटीन (14-15 प्रतिशत) एवं तेल (12 प्रतिशत) पाया जाता है।

पी.आर.ए.-3 (9401): गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के पर्वतीय परिसर रानीचौरी द्वारा संकर पद्धति से पी.आर.ए. -8801 एवं स्वर्णा से इस किस्म का अनुमोदन जम्मू-कश्मीर के अलावा उत्तर-पश्चिमी हिमालय क्षेत्र के लिए सन् 2003 में किया गया था। इसके पौधे लगभग 140 सें.मी. लंबे होते हैं। यह किस्म लगभग 135 दिन में पककर तैयार हो जाती है जिसकी औसतन पैदावार 16.50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इस किस्म में रोग एवं कीड़ों का प्रकोप नहीं होता है।

दुर्गा (आई.सी. 35407): इस किस्म का विकास हिमाचल प्रदेश से एकत्रित जननद्रव्य एन.आई.सी. 22535 में से छंटाई करके राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के शिमला क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा किया गया था। इस किस्म का अनुमोदन हिमाचल प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र एवं उत्तराखंड में खेती के लिए सन् 2006 में हुआ। इसके पौधे 170 सें.मी. तक बढ़ते हैं तथा लगभग 125 दिन में किस्म पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 21.0 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह किस्म कीड़े एवं रोगों के प्रकोप से सुरक्षित है।

वी.एल. चुआ-44: विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा विकसित इस अगेती किस्म (110-120 दिन) का अनुमोदन उत्तराखंड प्रदेश के लिए सन् 2006 में किया गया था। इसकी औसतन पैदावार 13.20 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

मैदानी क्षेत्रों की लिए उन्नत किस्में

गुजरात अमरेन्थ-1 (जी.ए.-1): इस किस्म का विकास गुजरात के स्थानीय क्षेत्र से एकत्रित जननद्रव्य में से छंटाई करके एस.डी.ए.यू., एस.के. नगर द्वारा किया गया था। इस किस्म का अनुमोदन गुजरात एवं महाराष्ट्र में खेती करने के लिए सन् 1991 में हुआ। इसके पौधे लगभग 100-110 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं और औसतन पैदावार 19.50 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है। इस किस्म में कीड़े एवं रोगों का प्रकोप नहीं होता है।

सुवर्णा: यू.ए.एस., बंगलौर द्वारा विकसित इस किस्म का अनुमोदन सन् 1992 में किया गया था। इसके पौधे 120-130 सें.मी. ऊंचे और 80-90 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 16 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह किस्म कर्नाटक, ओडीशा, महाराष्ट्र, तमिलनाडु एवं गुजरात राज्यों में खेती के लिए उपयुक्त है।

गुजरात अमरेन्थ-2 (जी.ए.-2): गुजरात राज्य के स्थानीय क्षेत्र रसना, जिला बनासकांटा से एकत्रित जननद्रव्य में से छंटाई करके एस.डी.ए.यू., एस.के. नगर द्वारा सन् 2000 में विकसित किया गया। इस किस्म का अनुमोदन गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्यों में खेती करने के लिए किया गया

है। यह किस्म जी.ए.-1 से अगेती है और 90 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 23 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

कपिलासा (बी.जी.ए.-2): इस किस्म का विकास ओडीशा प्रदेश में स्थानीय जगह से एकत्रित जननद्रव्य में से छंटाई करके ओ.यू.ए.टी., भुबनेश्वर द्वारा सन् 2005 में किया गया था, जिसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 13.50 क्विंटल प्रति हैक्टर है। इसके पौधे 165 सें.मी. ऊंचाई के होते हैं और 95 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। यह किस्म ओडीशा, तमिलनाडु, कर्नाटक राज्यों में खेती करने के लिए उचित मानी गई है। इस किस्म में कीट एवं रोगों का कोई प्रकोप नहीं होता है।

गुजरात अमरेन्थ-3 (जी.ए.-3): एस. डी.ए.यू., एस.के. नगर द्वारा विकसित इस किस्म का अनुमोदन सन् 2008 में गुजरात एवं झारखंड राज्यों के लिए किया गया था। इसके पौधे 130-150 सें.मी. ऊंचे तथा 90-100 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 12.50 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

आर.एम.ए.-4: इस किस्म का विकास राजस्थान में स्थानीय जगह मण्डोर से एकत्रित जननद्रव्य (आई.सी. 35647) में से छंटाई करके आर.ए.यू. के क्षेत्रीय केन्द्र मण्डोर, जोधपुर द्वारा सन् 2008 में किया गया था। इसका अनुमोदन राजस्थान, झारखंड, ओडीशा राज्यों में खेती के लिए किया गया था। इसके पौधे 122 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं तथा इसकी औसतन उत्पादन की क्षमता 13.90 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

आर.एम.ए.-7: इस किस्म का विकास राजस्थान में स्थानीय रूप से एकत्रित जननद्रव्य (आर.यू.-7-एस.पी.एस.-7) में से छंटाई करके आर.ए.यू. के क्षेत्रीय केन्द्र मण्डोर, जोधपुर द्वारा सन् 2010 में किया गया था। इसका अनुमोदन राजस्थान, गुजरात, ओडीशा, महाराष्ट्र, हरियाणा एवं दिल्ली राज्यों के लिए किया गया था। इसके पौधे 120 सें.मी. ऊंचे होते हैं और 126 दिन में पककर तैयार हो जाते हैं। इसकी औसतन पैदावार 14.50 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

उपयोग के अनुसार चौलाई की विभिन्न प्रजातियों को निम्नलिखित वर्गों में बांटा गया है	
उपयोग	**प्रजाति**
दानों के लिए	अमरेन्थस हाईपोकान्ड्रएकस, अमरेन्थस कारडेन्ट्स, अमरेन्थस एड्लिस, अमरेन्थस कोरून्टस
सब्जी के लिए	अमरेन्थस डूबियस, अमरेन्थस वोलीटन, अमरेन्थस विरीडीस, अमरेन्थस ट्राई कलर
सब्जी एवं चारे के लिए	अमरेन्थस हाइब्रिड्स
जंगली प्रजाति	अमरेन्थस स्पाइनोसस

अन्य फसलों के साथ चौलाई		
सहफसलीय	**फसल अनुपात**	**उपयुक्त क्षेत्र**
राजमा + चौलाई	2:1	पर्वतीय क्षेत्र
सुतारी + चौलाई	2:1	पर्वतीय क्षेत्र
मंडुआ + चौलाई	6:2	कर्नाटक
मूंगफली + चौलाई	6:1	कर्नाटक
अरहर (कतार 90 सें.मी.) + चौलाई	1:2	कर्नाटक, ओडीशा
अरहर (कतार 75 सें.मी.) + चौलाई	1:1	ओडीशा

सारणी 1. पोषक तत्वों के लिहाज से चौलाई, गेहूं एवं चावल की तुलना

पोषक तत्व	चौलाई	गेहूं	चावल
प्रोटीन (ग्राम/100 ग्राम)	15.6	11.8	6.8
वसा (ग्राम/100 ग्राम)	6.3	1.5	0.5
ऊर्जा (कि.ग्राम कैलोरी)	410	346	345
रेशा (ग्राम/100 ग्राम)	2.4	1.2	0.2
खनिज लवण (ग्राम/100 ग्राम)	2.9	1.5	0.7
कैल्शियम (मि.ग्राम/100 ग्राम)	222	41	10
लाईसिन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	5.5	2.9	3.7
मिथियोनिन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	2.6	1.5	2.4
सिस्टीन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	2.1	2.2	1.4
आईसोल्युसिन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	3.9	3.3	3.9
लौह (मि.ग्राम/100 ग्राम)	13.9	3.5	1.8

सारणी 2. चौलाई की उन्नत किस्मों में तुलनात्मक पोषक तत्व

उन्नत किस्में	प्रोटीन	लाईसिन	वसा
अन्नपूर्णा	12.20	5.40	62.10
जी.ए.-1	13.23	4.83	–
जी.ए.-2	13.70	4.50	62.40
स्वर्णा	12.57	5.23	58.90
पी.आर.ए.-1	13.10	4.80	–
पी.आर.ए.-2	15.00	4.90	60.20
पी.आर.ए.-3 (9401)	13.60	5.60	60.20
आई.सी.-35407 (दुर्गा)	14.10	4.80	55.80
बी.जी.ए.-2	13.57	4.87	–

उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी

भूमि का चयन: चौलाई अम्लीय एवं लवणीय भूमि से प्रभावित होती है इसलिए इसे साधारण भूमि, जिसकी पी-एच. की मात्रा 6-8 हो पर उगाया जाता है। चौलाई की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी: चौलाई के बीज छोटे आकार के होने के कारण खेत का चयन एवं उसकी तैयारी पर विशेष ध्यान देना जरूरी है। बिजाई के समय मिट्टी भुरभुरी होने से बीज का मिट्टी से सही संपर्क हो जाता है इसके लिए दो से तीन बार जुताई करके पाटा लगा देना चाहिए। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखें कि बिजाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक: साधारणत: किसान चौलाई की फसल में संतुलन एवं सही तरीके से खाद एवं उर्वरकों का सही इस्तेमाल नहीं करते। प्राय: भूमि की उर्वराशक्ति कम होने के कारण उत्पादन कम होता है। इस फसल के लिए सामान्य रूप से 50 क्विंटल गोबर की सड़ी हुई खाद, 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 20 कि.ग्रा. पोटाश देने से पैदावार में वृद्धि हो सकती है। गोबर की खाद को खेत की अन्तिम जुताई से पहले एक समान बिखेर कर जुताई करनी चाहिए जबकि उर्वरक अन्तिम तैयारी के समय भूमि में डाल देना चाहिए।

बीज की मात्रा: बीज की प्रति हैक्टर मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि किस विधि से बुआई करनी है। छिड़काव विधि से 2 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर और कतार विधि से 1.50 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर से जरूरत होती है।

बुआई का समय: चौलाई की फसल रबी एवं खरीफ दोनों में ली जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में मई एवं जून तथा मैदानी क्षेत्रों में अक्टूबर एवं नवम्बर बुआई का उपयुक्त समय होता है।

बुआई की विधि: प्राय: किसान पर्वतीय क्षेत्रों में चौलाई की बुआई छिटकवां विधि से करते हैं। इस विधि में समय कम लगता है और सुगमता भी रहती है, परन्तु इससे उपज कम मिलती है। अत: अधिक पैदावार के लिए बुआई हमेशा पंक्तियों में करनी चाहिए जिससे फसल की देखभाल करना आसान होता है और पौधों की बढ़वार अच्छी होने के साथ में पैदावार भी अधिक मिलती है। कतार से कतार की दूरी 45 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 15 सें.मी. एवं 2 सें.मी. गहराई तक बुआई करनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंध: साधारणत: खरीफ चौलाई की फसल को वर्षा पर निर्भर फसल के रूप में उगाया जाता है। अत: समय पर उचित वर्षा होती रहे तो अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। समय पर वर्षा न हो तो आवश्यकतानुसार दो से तीन सिंचाई करनी चाहिए। रबी चौलाई को सामान्यत: तीन से चार सिंचाई की जरूरत होती है।

निराई-गुड़ाई: फसल बुआई के 5-6 दिन के बाद खरपतवार निकल आते हैं। फसल के साथ उगे खरपतवार पोषक तत्व, स्थान, धूप आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं और पौधों के विकास पर इसका प्रभाव पड़ता है। अत: बिजाई के तीन से चार सप्ताह पश्चात निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों को समाप्त कर देना चाहिए।

अन्त:फसल एवं मिश्रित खेती: चौलाई को मुख्यत: शुद्ध, मिश्रित एवं सहफसलीय तौर पर उगाया जाता है। चौलाई विभिन्न फसलों जैसे—मंडुआ, सुतारी, मूंगफली, अरहर, राजमा आदि के साथ सहफसलीय खेती के रूप में अधिक प्रचलित है। चौलाई के लिए निम्नलिखित सहफसलीय चक्र उपयुक्त है :

- चौलाई + सुतारी - गेहूं (1 वर्ष)
- चौलाई + राजमा - गेहूं (1 वर्ष)
- चौलाई + लोबिया - गेहूं (1 वर्ष)
- चौलाई + सोयाबीन - गेहूं (1 वर्ष)

कीट-व्याधि नियंत्रण

चौलाई की फसल में विशेष कीड़े एवं बीमारियां कम लगती हैं। अत: बीमारियों की सही पहचान करके नियंत्रण करना आवश्यक है ताकि उपज में होने वाली हानि को रोका जा सके। चौलाई की खड़ी फसल में कभी-कभार पर्णजालक कीट का प्रकोप हो जाता है। यह कीट सूंडी बाली निकलते समय पत्तियों की निचली सतह को खा जाते हैं जिससे केवल शिरा ही रह जाती है। इन कीटों का प्रकोप कभी इतना भीषण रूप ले लेता है जिससे फसल काफी हद तक प्रभावित होती है। इसकी रोकथाम के लिए मिथाईल-ओ-डेमिटान या डाई मिथोएट के 0.1 प्रतिशत या क्यूनालफॉस के 1.5 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

उपज

चौलाई की औसतन उपज 16 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है। यदि उन्नत किस्में एवं इन फसल पद्धतियों को अपनाया जाये तो चौलाई की 40 क्विंटल प्रति हैक्टर पर्वतीय क्षेत्रों में तथा 25 क्विंटल प्रति हैक्टर मैदानी क्षेत्रों में पैदावार ली जा सकती है। ■